

समयसार, भावार्थ के बाद दूसरा पैराग्राफ है। सम्यक्दृष्टि के... अर्थात् क्या ? कि यह आत्मा जो है, वह शुद्ध चिदानन्द शुद्धस्वरूप है। उसका मूलस्वरूप सत् है और ज्ञान-आनन्दादि उसका स्वभाव है। उसकी दशा में जो पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वे तो आस्रव हैं। आस्रव अर्थात् बन्ध का कारण हैं। जैसे नाव में छिद्र हो और पानी आवे; इसी प्रकार आत्मा शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द प्रभु है, तथापि जिसे भान नहीं, उसे अन्दर मिथ्यात्व के कारण (उसका अनुभव नहीं होता)। यहाँ अधिक यह बात लेनी है।

वस्तुस्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसका ज्ञान और भान नहीं, वह आत्मा के अतिरिक्त परपदार्थ का कर्ता होता है और अन्दर राग तथा पुण्य और पाप के भाव हों, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग पाप (भाव है)। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति यह पुण्य (भाव है), परन्तु दोनों आस्रव हैं; इसलिए बन्ध के कारण हैं। इन बन्ध के कारण का (जिसे अभाव हुआ है ऐसा) सम्यग्दृष्टि (अर्थात् जिसे) स्वरूप की अन्तर्दृष्टि हुई है, शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द प्रभु की सत्यदृष्टि हुई है और वह चैतन्यस्वरूप पवित्र है, उसका यहाँ अनुभव (हुआ है),

उसे शुद्ध चैतन्य को अनुसरणकर जो आनन्द का वेदन आना चाहिए, वह वेदन होकर अनुभव हुआ हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहने में आता है। यह सम्यग्दृष्टि की व्याख्या! आहाहा! बाकी यह पुण्य और पाप के भाव (हों), वह मेरा कर्तव्य है—ऐसा जो मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि / अज्ञानी / मूढ़ है। अनादि का चार गति में चौरासी के अवतार में भटकता है। आहाहा! वह परवस्तु का कर्ता होता है और अपने में होनेवाले विकार के परिणाम का रचनेवाला, करनेवाला, बननेवाला, स्वामी होता है, तब तक वह मिथ्यादृष्टि / अज्ञानी / मूढ़ है। आहाहा! ऐसा कठिन स्वरूप!

जब यह भगवान आत्मा वस्तु है न? पदार्थ है, तत्त्व है, सच्चिदानन्द प्रभु है। उसका जिसे पुण्य और पाप के भाव से भिन्न वह तत्त्व है, ऐसा अन्दर भान हो, तब वह सम्यग्दृष्टि होता है और तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे, तब वह सुख के पन्थ में पड़ा है, ऐसा कहा जाता है और उसका जहाँ भान नहीं और पुण्य तथा शुभ-अशुभभाव का कर्ता होकर मिथ्यात्वभाव से वहाँ रुका हुआ है, वह दुःख के पन्थ में है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! जगत से बहुत अलग। आहाहा!

उस सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व का.. अर्थात् विपरीत मान्यता का अर्थात् पर का कर सकता हूँ, पर का भला-बुरा कर सकता हूँ, पुण्य-पाप के भाव वे मेरे हैं; विकार है, वह त्रिकाली स्वभाव से भिन्न होने पर भी वह विकार परिणाम मेरे हैं, ऐसी मान्यतावाले को यहाँ मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्याश्रद्धा (कहते हैं)। आहाहा! और अनन्तानुबन्धी कषाय.. इस मिथ्यात्व के साथ अनन्त संसार के कारण, भटकने के (कारणभूत) ऐसे राग-द्वेष, उन्हें यहाँ अनन्त अनन्तानुबन्धी (कहते हैं)। अनन्त अर्थात् मिथ्यात्व के साथ रही हुई कषाय, राग और द्वेष, उसे यहाँ अनन्तानुबन्धी कषाय कहते हैं। सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म कोई दूसरी चीज़ है। आहाहा!

उस सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व का और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय न होने से.. उसे मिथ्यात्वभाव भी नहीं और मिथ्यात्व के साथ अनन्त संसार का कारण जो कषाय, वह भी उसे नहीं है। यह बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! उसे उस प्रकार के भावास्रव तो होते ही नहीं.. सम्यग्दृष्टि को मिथ्याश्रद्धा और मिथ्यात्व के साथ रहे हुए

अनन्त संसार के कारणरूप राग-द्वेष वह धर्म की दृष्टि और आत्मदृष्टि हुआ, आत्मज्ञान हुआ, तब वे भाव तो उसे होते नहीं। आहाहा!

उसे उस प्रकार के भावास्रव.. अर्थात् पुण्य और पाप के और मिथ्यात्वभाव, उसे उस प्रकार के मिथ्याश्रद्धा और अनन्त संसार के कारण के भावास्रव अर्थात् जिस परिणाम से नया बन्धन हो, वैसे भावास्रव तो होते ही नहीं.. आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत अलग प्रकार का है, बापू! धर्म कोई ऐसी चीज़ है (कि) अनन्त काल में इसने (किया नहीं)। चौरासी के अवतार अनन्त काल से करता है, क्योंकि यह तो अनादि आत्मा है, यह कहीं नया नहीं है, तथा कृत्रिम नहीं है, किसी का किया हुआ नहीं है; यह तो वस्तु है। अनादि की चीज़ है, इसकी खबर बिना चौरासी के अवतार में भटकता है। इसका भटकना बन्द कब हो? कि आत्मा परिपूर्ण परमात्मस्वरूप हूँ और ये पुण्य और शुभ-अशुभ जो दया, दान, व्रत के परिणाम (होते हैं), वह भी मेरी चीज़ नहीं... आहाहा! ऐसा जहाँ अन्तरभान होवे, तब उसे उस प्रकार के आस्रव अर्थात् मिथ्याश्रद्धा और उसके साथ में रहनेवाले राग-द्वेष, ऐसे परिणाम उसे नहीं होते। अरे! अनजान को एक-एक भाषा अनजानी लगे।

और मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय सम्बन्धी बन्ध भी नहीं होता। क्योंकि वह भाव नहीं तो फिर नया बन्ध भी उसके कारण नहीं होता। आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, भाई! चाहे जितनी बात को सरल करके रखे परन्तु उसकी मर्यादा में सरल होवे न? आहाहा! अब यह जरा सूक्ष्म आया है।

(क्षायिक सम्यक्दृष्टि के..) सम्यग्दर्शन तो हुआ है परन्तु क्षायिक अर्थात् कि जो अब नाश नहीं होगा और केवलज्ञान, परमात्मपद को प्राप्त करे, तब तक क्षायिक साथ में रहेगा, ऐसा वह क्षायिक सम्यग्दर्शन। पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसका अनुभव होकर उसके ज्ञान में, वर्तमान ज्ञान में उस पूर्ण स्वरूप का ज्ञान होकर, वह पूर्ण स्वरूप ऐसा है, ऐसी जो प्रतीति ज्ञान में ज्ञेय होकर आत्मा की प्रतीति होती है और वह प्रतीति क्षायिक हो कि जो हुई वह जाए नहीं। आहाहा!

ऐसे (क्षायिक सम्यक्दृष्टि के सत्ता में से मिथ्यात्व का क्षय होते समय..)

आहाहा! अधिकार इस प्रकार का आया है, बापू! क्या हो? आहाहा! अन्तरस्वरूप भगवान सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति का सागर यह है। वस्तु है, आत्मा पदार्थ है। उसमें अनन्त-अनन्त शान्ति और अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त-अनन्त (भरा है)। ऐसी अनन्त-अनन्त शक्तियों का वह सागर है! ऐसा जिसे अन्तर में सन्मुख होकर, पर से विमुख होकर ऐसी दृष्टि प्रगट हुई कि जो क्षायिक अर्थात् उसे विघ्न करनेवाले राग, मिथ्यात्व आदि का अंश रहा नहीं। ऐसा (क्षायिक सम्यक्दृष्टि के सत्ता में से..) आहाहा! (मिथ्यात्व का..) विपरीत श्रद्धा का (क्षय होते समय ही अनन्तानुबन्धी कषाय का..) आहाहा! वह अनन्त संसार का कारण, ऐसे राग-द्वेष का भी उसे अभाव है। (तत्सम्बन्धी अविरति..) आहाहा! अभी शब्द भी नहीं आते होंगे, वहाँ (यह समझ में किस प्रकार आये)?

यह तो अध्यात्म शास्त्र है, यह कोई लौकिक बात नहीं है। भाषा ही अध्यात्म है। आत्मा अन्दर आनन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। उसका ऐसा अन्तर में भान होकर प्रतीति हुई कि जिस प्रतीति के काल में मिथ्यात्व सम्बन्धी का तो क्षय हुआ, अनन्तानुबन्धी कषाय का भी नाश हुआ (तथा) (तत्सम्बन्धी अविरति..) आहाहा! उस सम्बन्धी जो अविरति अर्थात् उस मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी से सम्बन्धित जो अविरति। आहाहा! सब भाषा सूक्ष्म की है।

(अविरति और योगभाव का..) क्या कहते हैं? आत्मा में एक अयोग ऐसा स्वभाव है। (आत्म) प्रदेश में यह कम्पन होता है, वह तो विकार है। अन्तर स्वरूप में एक अयोग नाम का (स्वभाव है)। जैसे आत्मा में ज्ञान, आनन्द आदि, शान्ति आदि स्वभाव है, वैसे एक अयोग नाम का उसका गुण-स्वभाव है। उस अयोग नामक गुण का भी (परिणमन होता है)। आहाहा! (योगभाव का भी क्षय हो गया होता है..) एक अंश भी उस अयोगभाव का अंश प्रगट होता है। अर्थात् कम्पनभाव का इतना उसे नाश होता है। सब भाषा अलग प्रकार है। चौथे गुणस्थान में, हों!

आत्मा अभी तो पाँचवाँ, छठवाँ और केवलज्ञान, परमात्मा हो, वह तो तेरहवाँ (गुणस्थान) अलग। जैसे मंजिल पर चढ़ने में सीढ़ियाँ होती हैं, वैसे गुणधारा के चौदह सोपान होते हैं। उसमें से चौथे गुणस्थान की धारा की बात अभी चलती है। आहाहा! इस

चौथे गुणस्थान की धारा में क्षायिकदशा जहाँ हुई, भले गृहस्थाश्रम हो, परन्तु अन्तर में यह स्वामीपना उसे राग का और राज्य का उड़ गया है। चक्रवर्ती का बड़ा राज्य हो, तो भी स्वामीपना जिसे अन्तर में से उड़ गया है। आहाहा!

अन्तर में भगवान अन्तर आनन्द का दल है, आनन्द का दल! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का दल पिण्ड प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसा जहाँ अन्तर की दृष्टि के सन्मुख होकर भान हुआ तो कहते हैं कि मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी तो गये परन्तु उनसे सम्बन्धित अविरति का अंश भी गया और उनसे सम्बन्धित योग के कम्पन के अंश का भी उतना अभाव हुआ, क्यों? - कि सम्यग्दर्शन अर्थात् 'सर्व गुणांश, वह समकित।' जो आत्मा प्रभु है... यह (शरीर) तो हड्डियाँ, देह जड़-मिट्टी है, यह कोई आत्मा नहीं है, यह तो मिट्टी-धूल है। यह वाणी धूल जड़ है। अन्दर एक कर्म है, पूर्व में पुण्य-पाप, शुभ-अशुभभाव किये हों (वैसे) पुण्य-पाप। इस पुण्य के उदय के कारण दो-पाँच लाख पैसा (रुपया) मिले न? बुद्धिरहित हो परन्तु फिर भी करोड़ों रुपये कमाये। यह तो पूर्व के पुण्य के कारण से है। वह एक जड़कर्म है। उस जड़ से भी प्रभु तो अन्दर भिन्न है। आहाहा! उसमें दया, दान और व्रत के परिणाम तथा काम, क्रोध के परिणाम से भी वह पृथक् है। ऐसे पृथक् का भान हुआ तो उसमें जितने गुण हैं, उनकी एक अंश शक्तियों की व्यक्तता हुई। यह ऐसा कहते हैं कि उस काल में योग का अंश भी गया और अयोग का अंश भी व्यक्त-प्रगट हुआ। आहाहा! समझ में आया?

आहाहा! (योगभाव का भी क्षय हो गया होता है..) क्षायिक समकित लिया है न? क्षयोपशम (समकित में) भी आंशिक होता है, परन्तु यह तो क्षायिक (समकित) लिया है। आहाहा! जिसका पूरा मूल तोड़ डाला! फिर से उगे नहीं। ऐसी आत्मा के आनन्द के स्वरूप की, ज्ञान में वस्तु को ज्ञेय बनाकर वर्तमान ज्ञान की दशा में पूरे तत्त्व को ज्ञेय बनाकर जो अन्तर में यह ज्ञान होकर प्रतीति हुई, वह प्रतीति यहाँ क्षायिक गिनी गयी है। उस क्षायिक प्रतीति में विपरीत मान्यता और उसके साथ रहे हुए राग-द्वेष का तो उसे अभाव है, परन्तु उससे सम्बन्धित अविरतिभाव जो है, वह भी नाश होता है और उसमें योग के कम्पन का भाव जो है, एक अंश उसका भी नाश होता है और अयोग का एक अंश प्रगट होता है। आहाहा!

अभी गृहस्थाश्रम में हो, साधु चीज़ तो अलौकिक, दूसरी चीज़ है! श्रावक भी कोई अलौकिक है! श्रावक अर्थात् ये वाड़ा के श्रावक हैं, ये कहीं (श्रावक नहीं हैं) अन्दर में आत्म-अनुभव होकर स्वरूप में लीनता का, आनन्द का अंश बढ़े, तब उसे श्रावक कहने में आता है और उसमें से विशेष अतीन्द्रिय आनन्द का (वेदन आवे), प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर से उफान आवे, आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन (आवे), उन्हें साधु कहा जाता है। अर र! 'साधति इति साधु!' जो अनन्त स्वभाव है, उसे साधते हैं। गुण अनन्त हैं, उन्हें साधते हैं, इसलिए साधु। आहाहा! उन साधु को भी उतने प्रकार का क्षायिक समकित सहित साधुपना होता है, तो उन्हें मिथ्यात्व और दूसरे दो कषाय भी नहीं है और यहाँ तो चौथे गुणस्थान से भी उसके योग्य अविरति और उसके योग्य योग का अंश नाश हो गया है। आहाहा! ऐसा कहकर यह कहना चाहते हैं कि प्रभु! अनन्त-अनन्त गुण का गोदाम आत्मा है। बापू! आत्मा अनन्त गुण का गोदाम, बापू! इसने कभी सुना है? आहाहा!

अनन्त, जिनकी संख्या पार नहीं होता। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. इसे अनन्त गुणाकार किया ही करो तो भी यह अन्त में अनन्त का अन्तिम अनन्त आता नहीं, इतने अधिक एक-एक आत्मा में गुण भरे हैं। आहाहा! वे सभी गुण क्षायिक सम्यक्त्व होने पर सब गुणों का एक अंश प्रगटरूप से अनुभव में व्यक्तरूप से आता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो अब अपने यह उन्नीसवीं बार चलता है। यह समयसार तो पहले से अक्षर-अक्षर अठारह बार तो पूर्ण हो गया है। यह तो उन्नीसवीं बार चलता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! देह से तो भिन्न प्रभु है, परन्तु अन्दर, दया, दान, व्रत और तप का विकल्प / राग उठता है, उससे भी प्रभु अन्दर भिन्न है। आहाहा! ऐसा प्रभु चैतन्य भगवान, सत् चिदानन्द सत् है और चिद् ज्ञानानन्द है, ऐसा अन्तर में जैसी चीज़, जितनी चीज़ है, उतनी चीज़ का जिसे अन्तर में ज्ञान होकर प्रतीति / श्रद्धा हुई, उसे अनन्त गुण जितनी संख्या में है, उन सब गुणों का एक अंश शक्ति में से व्यक्तता आती है। आहाहा! भाषा में अन्तर, भाव में अन्तर। कहो, समझ में आया?

चौथे गुणस्थान में योग के अंश का क्षय होता है, (ऐसा) कहते हैं। पूरा योग भले चौदहवें (गुणस्थान में) हो। गुणस्थान चौदह हैं वे। आहाहा! परन्तु यहाँ भी उससे (सम्बन्धी

अविरति और योगभाव का भी क्षय हो गया होता है..) आहाहा! भगवान पूर्णानन्द प्रभु, ज्ञानानन्द सच्चिदानन्दस्वरूप! उसका शुद्ध चैतन्यघन अनादि से है परन्तु उसके भान बिना शरीर मेरा, शरीर की क्रिया में करता हूँ और किसी का भला कर दूँ और किसी का बुरा कर दूँ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव... आहाहा! ऐसा जो स्वभाव से विपरीतभाव, ऐसे मिथ्यात्व के साथ रहे हुए राग-द्वेष के कारण यह चार गति में चौरासी के अवतार में भटकता है। आहाहा! इसे भटकना कब मिटे? कि जिसमें वह भाव, विकार और विकार का फल जो अन्दर स्वरूप में नहीं है, ऐसा जो सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा है, उसका अवलम्बन लेने से जो कुछ अन्दर अज्ञान और राग-द्वेष और उस प्रकार की कषाय मिटती है, उस समय उससे सम्बन्धित अविरति और योग भाव का अंश भी मिटता है। आहाहा! अनजाने को नयी भाषा (वाले को) तो एकदम नया लगे। यहाँ तो ४४ वर्ष से (यह) चलता है। आहाहा! यह तो अन्तर की बातें हैं, बापू! बाहर की बातें अभी यहाँ कहीं है ही नहीं। बाहर की बातें सर्वत्र है।

यह अन्तर प्रभु कौन है? यह (शरीर दिखता है वह) तो मिट्टी है। उसकी यह सब दशाएँ होती हैं, वह भी उस मिट्टी के कारण (होती है), आत्मा के कारण नहीं। आहाहा! यह हिलना-चलना, बोलना सब जड़ की पर्याय-अवस्था है, आत्मा से नहीं। कैस जँचे? पूरे दिन मैं करूँ, मैं करूँ... यह मैंने किया, यह इसने कर दिया और मैंने उसका किया... नरसिंह मेहता भी कहते हैं न! वे वैष्णव में हुए हैं। 'मैं करूँ, मैं करूँ, यही अज्ञान है गाड़ी का भारी ज्यों श्वान खींचे।' गाड़ी के नीचे कुत्ता (हो) उसे खूटूँ छुए (तो वह ऐसा मानता है कि) गाड़ी मुझसे चलती है! इसी प्रकार अज्ञानी दुकान की गद्दी या घर में जाकर बैठा हो, वहाँ (ऐसा मानता है कि) ये सब घर के, दुकान के काम मुझसे होते हैं, यह स्त्री मेरी और पुत्र मेरा, मैंने इनका विवाह किया और मैंने इनको व्यवस्थित लगाया, मैंने इन्हें कमाने के रास्ते लगा दिया... ऐसा जो अज्ञान और मिथ्यात्वभाव... आहाहा! वह चार (गति में भटकानेवाला भाव है)।

**मुमुक्षु :** सब ही अज्ञान?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब मिथ्या है। इन्होंने सुमनभाई को पढ़ाया था। पैंतीस हजार रुपये खर्च करके पढ़ाया! और अभी आठ हजार का इनके लड़के का वेतन है। मुम्बई।

**मुमुक्षु :** उससे क्या हुआ ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल ! भला क्या ( हुआ ) ? लड़का किसका ? पैसा किसका ? बातें किसकी ? क्या है यह ? पैंतीस हजार तब खर्च किये, ( वह ) वकालात में पाप करके इकट्ठे किये थे । कोर्ट में पाँच घण्टे जाते थे, ( तब ) दो सौ रुपये लेते थे । पैंतीस वर्ष पहले की बात है, हों ! अभी तो सब ( चीजें ) महँगी हो गयी न ! अभी तो दाना महँगा हुआ, इसलिए पैसा सस्ता हो गया । पहले के एक लाख और अभी के पच्चीस लाख, दोनों समान । आहाहा ! अरे ! किसका पुत्र ? किसका बाप ? भाई ! अरे रे ! अरे ! इसमें दया का भाव आवे, वह राग है, वह जीव का नहीं, भाई ! प्रभु ! तुझे तेरी प्रभुता की खबर नहीं । आहाहा ! पर को नहीं मारने का और बचाने का भाव आवे, परन्तु वह कहीं बचा नहीं सकता । पर का तो उसके कारण से होता है परन्तु यह मानो कि बचा दूँ, ऐसा भाव आवे, राग ( आवे ) । उस राग का स्वामी हो, वह मिथ्यादृष्टि है । आहाहा ! वह आत्मा के स्वभाव की शान्ति का घात करता है । आहाहा !

यहाँ कहते हैं कि जिसे ऐसा प्रभु है, ऐसा जहाँ अन्दर में भान हुआ, ज्ञातादृष्टा हुआ, स्वरूप ज्ञान और आनन्द आदि है, उसे ज्ञान की पर्याय में-वर्तमान दशा में, उसका जितना जैसा स्वरूप है, वैसा उसे ज्ञाता हुआ और जानकर प्रतीति हुई, उस प्रतीति में विपरीत मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय तो उसे आती नहीं परन्तु उसे उस सम्बन्धी अविरति और योग भाव भी मिट गया है । आहाहा ! वाड़ा में तो बातें यह करे— दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, दया मण्डली करो और यह धूल करो और पाँच-पच्चीस हजार इकट्ठे करो, लाख-दो लाख, पाँच लाख इकट्ठे करके दूसरे की सहायता करो । क्या करे ? धूल ! आहाहा ! भाई ! सूक्ष्म बात, बापू !

यह अँगुली जड़ है, धूल है, यह तो मिट्टी है । वह यह हिलती है, वह जड़, जड़ के कारण से ( हिलता है ), आत्मा के कारण से नहीं । आहाहा ! यह माने कि मुझसे होता है, यह इसकी दृष्टि सत्य का खून करनेवाली असत्य है । असत्य कहो या मिथ्या कहो, मिथ्या कहो या मिथ्यादृष्टि कहो, ( सब एकार्थ है ) । आहाहा ! ऐसी बातें हैं । चौरासी के अवतार अनन्त काल से ( कर रहा है ) । चौरासी लाख योनि में एक-एक में अनन्त बार अवतरित हुआ । अनन्त बार अरबोंपति हुआ, मनुष्य अनन्त बार हुआ, स्वर्ग ( में ) अनन्त बार



(गया) पशु अनन्त बार हुआ। चींटी, कौआ, कुत्ता अनन्त बार हुआ। बापू! अनन्त भव हुए। इस प्रकार भूतकाल में भवरहित कभी रहा नहीं। इस भव के पहले भव, पहले भव, पहले भव.. भव.. भव.. भव.. अनादि से भव में परिभ्रमण कर रहा है। आहाहा! उसे परिभ्रमण को मिटाने का उपाय यह है। आहाहा!

आत्मा पुण्य, शुभ दया, दान, व्रत के परिणाम से भी भिन्न है और अपने स्वभाव से परिपूर्ण भरपूर! आहाहा! राग और दया, दान से खाली और अपने अनन्त गुण के स्वभाव से भरपूर, ऐसा जहाँ अन्तर में ज्ञान और आनन्द की प्रतीति होती है, तब कहते हैं कि उस-उस काल में अमुक-अमुक अविरति और योग का भी नाश हो जाता है। मात्र मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी गये, इतना नाश हुआ, इतना, ऐसा नहीं है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** मिथ्यात्व की भूमिका का समस्त विकार गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह गया; इसलिए इसे जितने गुण हैं, शक्ति / सत्व त्रिकाली प्रभु! ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. इसकी शक्तियाँ हैं। शक्तियाँ अर्थात् गुण। प्रत्येक गुण का आंशिक, वस्तु का ज्ञान और अनुभव होने पर, यह दया, दान के विकल्प से-राग से भी प्रभु भिन्न है। आहाहा! ऐसी धर्म की पहली दशा, धर्म की पहली सीढ़ी... आहाहा! वह अभी धर्म की पहली सीढ़ी है। आहाहा! उस दशा में भी जितने गुण संख्या से अनन्त हैं, उन सबका व्यक्त अंश प्रगट होता है, तो अयोगगुण जो है, उसका अंश भी प्रगट होने पर उस काल में योग के कम्पन का उतना तो नाश हो जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह किस प्रकार की बातें?

यह तो परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वरपद जिन्हें प्रगट हुआ, उन्हें तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए, उनकी वाणी इच्छा बिना निकलती है। ओम ध्वनि! उसमें आयी हुई यह बात है। जगत को बहुत कठिन पड़े, बापू! जगत पूरा दूसरे पंथ में-मार्ग में चढ़ गया। धर्म गुरुओं के नाम से भी दूसरे मार्ग में चढ़ा दिया है। आहाहा! दया पालो और व्रत करो और अपवास करो और भक्ति करो, पूजा करो, दान करो, मन्दिर बनाओ और दान में पैसा खर्च करो... इसमें क्या है? बापू! यह क्रिया तो पर की-जड़ की है। उसमें कदाचित् राग मन्द किया हो तो पुण्य / शुभभाव है, वह बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : उसे धर्म माने तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म माने तो मिथ्यात्व है। वह तो मिथ्यादृष्टि-झूठी दृष्टि है, सत्य से विरुद्ध दृष्टि है। आहाहा!

(यहाँ कहते हैं) (इसलिए उसे उस प्रकार का बन्ध नहीं होता;..) क्या कहते हैं ? उस प्रकार का अविरति का अंश नहीं है, योग का उस प्रकार का क्षय हुआ, इसलिए उस प्रकार का बन्ध भी उसे नहीं होता। यह बहुत रचा, इनने! (औपशमिक सम्यग्दृष्टि के..) कहते हैं कि क्षायिक हुआ न हो परन्तु जैसे पानी में मैल हो और मैल बैठ जाए और जैसे पानी नितर जाए परन्तु मैल अन्दर हो, वैसे आत्मा में अन्तर अनुभव में मिथ्या भ्रान्ति है, वह बैठ गयी हो, उसे यहाँ उपशम समकित कहते हैं। पहले में क्षय हो गया हो, उसे क्षायिक कहते हैं। क्षय अर्थात् ? उस पानी में जैसे मैल है, वह एकदम पूर्ण निकालकर अकेला निर्मल हो जाए, वैसे आत्मा पूर्णानन्द के नाथ को क्षायिक समकित द्वारा प्रतीति करे, उसे उस सम्बन्धी के प्रकार के बन्ध के कारण वहाँ नहीं होते। ऐसे उपशम समकित को भी... आहाहा! है ?

(मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी कषाय मात्र उपशम में-सत्ता में-ही होने से सत्ता में रहा हुआ द्रव्य उदय में आये बिना..) कहते हैं कि भले निर्मलता अकेली बाहर आयी नहीं, परन्तु निर्मलता हुई है, उसमें मलिनता का अंश, सत्ता में कर्म का अंश पड़ा है, परन्तु वह सत्ता में पड़ा है, वह बाहर आये बिना आत्मा को मलिनता नहीं होती। आहाहा! (उपशम में-सत्ता में-ही होने से सत्ता में रहा हुआ द्रव्य..) (अर्थात्) जड़कर्म (उदय में आये बिना उस प्रकार के बन्ध का कारण नहीं होता; और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को भी..) तीनों लिए। (सम्यक्त्वमोहनीय के अतिरिक्त..) सम्यक्त्वमोहनीय है। जरा अन्दर सूक्ष्म (रूप से है)। (छह प्रकृतियाँ विपाक में (उदय में) नहीं आतीं, इसलिए उस प्रकार का बन्ध नहीं होता।) आहाहा! इतने में कितना डाला है, लो! पण्डितजी अर्थ करते हैं, हों! पण्डित जयचन्द्रजी ने रखा है। मूल पाठ है कुन्दकुन्दाचार्यदेव का, श्लोक है और अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका है और यह अर्थ पण्डितजी का है। आहाहा!

आत्मा अर्थात् क्या, कुछ खबर नहीं। आत्मा अर्थात् यह दूसरे का कुछ करे और

कर दे, हिले और चले और यह और वह... अरे! प्रभु! आत्मा क्या? बापू! तुझे खबर नहीं। अनन्त काल हुआ। चौरासी के अवतार में, साधु भी अनन्त बार हुआ, हजारों रानियाँ छोड़कर मुनि हुआ, परन्तु राग से भिन्न आत्मज्ञान किये बिना इसका परिभ्रमण मिटा नहीं। आहाहा! यह आता है न? छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो', छहढाला में आता है, छहढाला! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा! परन्तु भगवान आत्मा... आहाहा! इन दया, दान, व्रत के विकल्प से भी भिन्न अन्दर है, ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद नहीं आया और पंच महाव्रतादि अनन्त बार पालन किये परन्तु उसमें कुछ भव घटा नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है।

**अविरतसम्यग्दृष्टि इत्यादि के जो..** तब कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, आत्मा का भान हुआ, तो भी अभी उसे चारित्रमोह का उदय विद्यमान है.. अस्थिरता का उदय वर्तता है। सम्यग्दर्शन होने पर भी अभी अन्दर स्वरूप में पूर्ण स्थिर नहीं होता। चरना— चारित्र अर्थात् चरना; चरना अर्थात् रमना। आनन्दस्वरूप भगवान का भान होकर और पहिचान होकर पश्चात् उसमें रमना, इसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई क्रियाकाण्ड और पंच महाव्रत तथा नग्नपना, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति का ज्ञान होकर 'यह वस्तु है', ऐसा भान हुआ, पश्चात् उसमें स्थिर हो, इसका नाम चारित्र कहा जाता है। उस (समय जो) चारित्र (मोह का) जब तक उदय वर्तता है (अर्थात्) स्थिरता नहीं है। उसमें जिस प्रकार जीव युक्त होता है.. सम्यग्दर्शन है, आत्मज्ञान है परन्तु पूर्व (का) चारित्र मोहनीय का कर्म पड़ा है, वह उदय में आता है, प्रगट होता है, तब जिस प्रकार से जुड़े, उसे नया बन्ध होता है। युक्त होता है, उसी प्रकार उसे नवीन बन्ध होता है;.. पूर्व का (उदय) आया, इसलिए उससे ही इसे विकार होता है, ऐसा नहीं है। जितना स्वयं करे, उस प्रकार से इसे विकार होता है। धर्मी को भी, हों! समकित्ती को भी! आहाहा! अस्थिरता का राग-द्वेष होता है। आहाहा!

**इसलिए गुणस्थानों के वर्णन में..** गुणस्थान अर्थात् जैसे मंजिल पर चढ़ने में सीढ़ियाँ होती हैं, वैसे आत्मा की पूर्ण दशा प्राप्त करने में चौदह सीढ़ियाँ हैं। आहाहा! बात-बात में अन्तर लगता है। आहाहा! है? (अविरत सम्यग्दृष्टि आदि) गुणस्थानों में अमुक

अमुक प्रकृतियों का बन्ध कहा है। किन्तु यह बन्ध अल्प है, इसलिए उसे सामान्य संसार की अपेक्षा से बन्ध में नहीं गिना जाता। यह क्या कहा? कि जिसे इस आत्मा का अनुभव होता है, अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ स्वाद आता है, उसे भले चारित्र का दोष आवे, राग हो, पुण्य हो, पाप हो, ऐसे भाव आवें परन्तु उनकी यहाँ मुख्यता नहीं है। उनका उसे विशेष बन्धन है और बन्धन में होने पर भी उनकी स्थिति और रस विशेष नहीं है। मूल काट डाला है। जैसे मूल काटा, उसके बाद के पत्ते सूखने में अब देर नहीं लगेगी। आहाहा! कठिन काम है। इसी प्रकार जिसने मिथ्यात्व का मूल तोड़ डाला है और जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया है... आहाहा! उसे अब चारित्र का दोष है।

भरत चक्रवर्ती समकिती थे, छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं। श्रेणिक राजा! हजारों रानियाँ और क्षायिक समकिती! तीर्थकरगोत्र बाँधा है। अभी पहले नरक में गये हैं परन्तु वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में तीर्थकर होनेवाले हैं। व्रत, तप और चारित्र नहीं था। अन्तर के व्रत और तप, हों! यह बाहर के व्रत-तप करें, वह तो राग का क्रियाकाण्ड, संसार है। अन्तर में स्वरूप में लिपट जाना और अन्तर में स्थिर हो जाना। आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में भान होकर स्थिर हो जाना, अन्दर जम जाना। आहाहा!

जैसे बर्फ की बड़ी शिला होती है न? मुम्बई में पचास-पचास मण की (होती है)। शीतल शिला ऐसी बड़ी पचास-पचास मण की! बर्फ! इसी प्रकार यह भगवान अन्दर शान्तरस की बड़ी शिला है। अरे रे! कैसे जँचे? अविकरी शान्तरस की शिला यह प्रभु आत्मा है। आहाहा! इसका जिसे भान हुआ, उसे अभी अस्थिरता का कारण दोष है, परन्तु उसे सामान्य संसार की अपेक्षा से बन्ध में नहीं गिना जाता। सामान्य अर्थात् मिथ्यात्व। मिथ्यात्व से जो संसार बन्ध होता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि के चारित्र के दोष से इतना ऐसा बन्ध नहीं होता। सामान्य संसार अर्थात् अनन्त संसार का कारण जो मिथ्यात्व, (वह सामान्य संसार)। आहाहा! है?

अल्प सामान्य संसार की अपेक्षा से.. भाषा क्या कहते हैं? सामान्य संसार अर्थात्? कि जो आत्मा आनन्द और शुद्ध चैतन्यघन है, ऐसा भान न होने से विपरीत मान्यता है कि पुण्य और दया, दान, ये मेरे और इनसे मेरा लाभ—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वह मुख्य संसार है। वह मिथ्यात्वभाव संसार है। वह संसार—सामान्य संसार अर्थात् अनन्त

संसार है। ऐसा वह संसार समकित्ती को नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ?

किन्तु यह बन्ध अल्प है, इसलिए उसे सामान्य संसार की अपेक्षा से बन्ध में नहीं गिना जाता। आहाहा! सम्यक्दृष्टि चारित्रमोह के उदय में.. धर्मी है (कि जिसे) आत्मा का ज्ञान होता है, तब उसे जरा राग आता है, तो भी वह उस राग (में) स्वामित्वभाव से युक्त नहीं होता,.. वह राग-विकल्प है, वह मेरा है, इस प्रकार राग में जुड़ता नहीं है। अस्थिरता से जुड़ता है, परन्तु मेरा है—ऐसी स्वामित्व से नहीं जुड़ता। आहाहा! यह किस प्रकार का उपदेश ? यह किस प्रकार की बात ? बापू! यह तो अलग है, दुनिया से अलग है, बापू! पूरी दुनिया को जानते हैं न! आहाहा! धर्म की पद्धति और धर्म से विरुद्ध क्या है, ये बातें ही कोई अलौकिक है, बापू! लोक को बेचारे को पड़ी कहाँ है ? व्यापार में चढ़े और दो-पाँच-पचास हजार, लाख-दो लाख मिले तो मानों की आहाहा! नौकरी में पाँच हजार का वेतन (होवे) और उसमें दस हजार का हो जाए, तो कहे, लापसी बनाओ! धूल में क्या है अब ? आहाहा! अकेला पाप है, बापू!

प्रभु अन्दर सच्चिदानन्द निर्मल आत्मा स्वभाव से स्फटिक जैसा पड़ा है। जैसे निर्मल स्फटिक, वैसे प्रभु निर्मल अन्दर है, परन्तु जैसे उस स्फटिक को लाल और पीले फूल होते हैं, इसलिए अन्दर लाल, पीली झाँई दिखाई देती है, इसी प्रकार प्रभु आत्मा में पूर्व के कर्म के निमित्त में जुड़ने से अन्दर राग और द्वेष की झाँई दिखायी देती है परन्तु उस राग-द्वेष के स्वामीरूप से धर्मी नहीं होता। आहाहा! अज्ञानी तो जहाँ हो, वहाँ मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... मैंने किया... (मानता है)।

**मुमुक्षु :** किसने किया ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करे कौन ? यह वस्तु नहीं इसकी ? उसकी दशा उसके जड़ से, उससे होती है। दूसरा आत्मा और दूसरे परमाणु हैं, उनकी पर्याय-अवस्था उनसे होती है। आहाहा! कहा न ? बापू! कठिन पड़े। यह हाथ देखो न, यह ऐसे चलता है, वे परमाणु हैं या नहीं ? जड़ है या नहीं यह ? अजीवतत्त्व है या नहीं ? इसमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श भरे हैं या नहीं ? इसकी अवस्था ऐसे होने की अवस्था इसके कारण होती है, आत्मा के कारण नहीं। कठिन बातें हैं। दुनिया से अलग प्रकार है। प्रत्यक्ष में तो जब पक्षघात होता है, तब

खबर नहीं पड़ती ? बहुत प्रेरणा करे, परन्तु इसकी जड़ की अवस्था होनी न हो, वह पर से हो—ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा !

अभी बेचारे लाभुभाई पड़े हैं, बड़ोदरा में। ६८ वर्ष की उम्र। ३५ वर्ष से तो ब्रह्मचर्य है। ३३ वर्ष की उम्र में ब्रह्मचर्य लिया। कौन जाने क्या हुआ, चलते हुए चक्कर आ गया। बेहोश है। अन्दर स्थिति बेहोश है। बड़ोदरा। यहाँ रहते थे और यहाँ बैठते थे। आहाहा ! ३३ वर्ष की उम्र में आजीवन ब्रह्मचर्य लिया। एक लड़का और एक लड़की हुई। हमारे पास (संवत्) २००० के वर्ष में राजकोट में (प्रतिज्ञा ली थी)। उनके पिता विरोध में, तो भी स्वयं ने ३३ वर्ष की उम्र में आजीवन ब्रह्मचर्य (की प्रतिज्ञा ली थी)। ३५ वर्ष उसे हुए और ३३ वर्ष (स्वयं की उम्र इसलिए अभी) ६८ हुए। अभी बेचारे... आहाहा ! ऐसे चक्कर आ गया है। हेमरेज हुआ है, बेसुध पड़े हैं। आहाहा ! यह जड़ की दशा, भाई ! तेरे रखने से नहीं रहेगी, भाई ! बापू ! हम ध्यान रखते हैं तो जड़ में ऐसा होता है। नहीं, तेरा ध्यान वहाँ काम नहीं आता, बापू ! आहाहा ! जड़ की जो अवस्था जिस समय में—काल में जो जड़ की दशा होनेवाली है, वह होगी ही। आत्मा नहीं कर सकता, आत्मा नहीं रोक सकता। आहाहा ! तब फिर इस दुनिया के चतुर किस प्रकार कहना ? दुनिया के चतुर किसे कहा जाए ? व्यापार करे, धन्धा करे, यह वकालात करे। लो, रामजीभाई वकालात करते थे, उस समय वकीलों में होशियार कहलाते थे। आहाहा ! धूल में भी नहीं, सब अभिमान था। आहाहा ! अरे रे ! प्रभु ! तू कौन है ? आत्मा। आत्मा अर्थात् क्या ? यह अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, वह आत्मा। आहाहा ! अरे ! ...प्रभु ! तुझे खबर नहीं। यह पुण्य, दया, दान, व्रत परिणाम के विकल्प उठें, वे भी तू नहीं, वे तुझे नुकसानकारी हैं। आहाहा ! यह कैसे जँचे ? पूरी दुनिया जहाँ—तहाँ अभिमान में चली है। इसका किया, इसका किया और इसका किया... आहाहा !

प्रभु ! तू तेरी सत्ता में से बाहर तो निकलता नहीं। तेरा जो अस्तित्व है, उसमें से बाहर निकलता नहीं तो बाहर का किसका तू करेगा ? आहाहा ! और जगत की चीजें हैं, वे उनकी अवस्था के कार्य बिना, वह चीज़ अवस्थारहित होती नहीं। कोई भी अवस्था उस—उस जड़ चैतन्य की उससे होती है। उससे हो, उसमें वहाँ तू क्या कर देगा ? आहाहा ! स्त्री—पुत्र को सम्हालते हैं, लड़कियाँ बड़ी है, उन्हें ठिकाने किया, लड़के अच्छी जगह

विवाहित किये। मूढ़ है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व के असत्य भाव को सेवन करनेवाला संसार के मूल को सेवन करता है। आहाहा! कठिन बात है, भाई!

यहाँ यह कहते हैं, समकित्ती को जरा राग-द्वेष हो। वह निश्चयदृष्टि में युक्तता ही नहीं है। आहाहा! है? स्वामित्वभाव से युक्त नहीं होता, वह मात्र अस्थिरतारूप से युक्त होता है;.. वह अस्थिरतारूप युक्त होता है, तथापि निश्चयदृष्टि में युक्तता नहीं है। आहाहा! आहाहा! इसलिए सम्यक्दृष्टि के रागद्वेषमोह का अभाव कहा गया है। इस अपेक्षा से। जब तक जीव कर्म का स्वामित्व.. है.. आहाहा! 'निष्काम काम करना'—ऐसा अज्ञानी कहते हैं। निष्काम (काम) करना, यह बात ही मूढ़ है। पर का कर सकूँ, यही बात निष्काम नहीं है, यही मिथ्या अभिमान है। आहाहा! अनासक्ति से काम लेना, ऐसा सब बोलते हैं। बहुत यह सब आता है। सब अभिमानी! निष्काम करना, काम करना, (वह) निष्काम करना। उसके फल की आशा नहीं रखना। यहाँ तो कहते हैं कि पर का कुछ कर सकता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्यात्व भ्रम और बड़ा संसार है। आहाहा!

जो भिन्न चीज़ है, उसकी भिन्नता तब रहती है कि उसके कार्य दूसरा न कर सके और उससे तू भिन्न, तेरा कार्य वह न कर सके, तब तो वे भिन्न-भिन्नरूप से रह सकते हैं। नहीं तो एक हो जाएँगे। आहाहा! ऐसा सुनने मिलना मुश्किल पड़ता है। है, दुनिया देखी है न, बाकी पूरी दुनिया देखी है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, जब तक कर्म का स्वामित्व.. रखे। कुछ भी राग, दया, दान के परिणाम हों, उनका स्वामित्व करे (अर्थात्) यह मैंने किया, मैंने किया, मेरा स्वरूप है। (ऐसा) जब तक जीव कर्म का स्वामित्व रखकर कर्मोदय में परिणमित होता है तब तक ही वह कर्म का कर्ता कहलाता है;.. यहाँ तक तो जीव राग का और पर का कर्ता मानता है। आहाहा! यह बड़ी दुकान में बैठता हो, तब (धन्धा) करता नहीं होगा? गद्दी में ऐसे बराबर बैठे, पाँच-पाँच हजार की आमदनी करे, लो! कर्मी लड़का जगे। कर्मी... कर्मी...! धर्मी नहीं। कर्मी लड़का जगे बड़ा, पाँच-पाँच हजार कमावे। धूल भी नहीं, सुन न! वे तो जगत के परमाणु हैं; वे आनेवाले हों, वे आते हैं; जानेवाले हों, वे जाते हैं। वह तेरी बुद्धि के कारण आये हैं (ऐसा नहीं) आहाहा! उनका तू कर्ता होता है, मेरी होशियारी से ये पैसे आये। मूढ़ है! भले बाहर (में) बड़ा पण्डित कहलाता हो।

**मुमुक्षु :** होशियार को तो नौकरी में रखते हैं ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नौकरी में रखे, वह उसका पुण्य हो, तत्प्रमाण आये बिना रहता नहीं । बहुत बुद्धि के वारदान देखे हैं न हमने । वारदान समझ में आया ? खाली । पाँच-पाँच हजार कमाते हैं, दस-दस हजार कमाते हैं । बहुत देखे हैं न ! (संवत्) १९६४-६५ की बात होगी, ६५-६६ ! हमारी पालेज में दुकान थी न ! माल लेने गये थे (वहाँ) एक खोजा जड़ जैसा था । (संवत्) १९६५-६६ की बात है । तब पचास हजार कमाता था । पचास हजार वर्ष के ! अभी के हिसाब से उसके पच्चीस गुने गिनो, उसमें बुद्धि क्या काम आवे ? बुद्धि का खाँ हो, (उसे) हजार कमाने में पसीना उतरे और बुद्धि का वारदान हो, वह लाखों कमावे । उसके साथ—पर के साथ क्या सम्बन्ध है ? बापू ! तुझे खबर नहीं । आहाहा !

यह यहाँ कहते हैं । उदय का ज्ञातादृष्टा होकर.. देखा ? धर्मी होने पर, आत्मा का ज्ञान होने पर जो कुछ राग-द्वेषादि आवें, उन्हें ज्ञातादृष्टा अर्थात् जानने-देखनेवाला रहे । पर के निमित्त से मात्र अस्थिरतारूप परिणमित होता है, तब कर्ता नहीं.. आहाहा ! यह राग की अस्थिरता धर्मी जीव को-धर्म का, आत्मा का भान (है, उसे) आवे, तो भी उसका वह कर्ता नहीं है । आहाहा ! है ? कर्ता नहीं किन्तु ज्ञाता ही है । जाननेवाला ही है । धर्मी तो ज्ञाता है । जैसे आँख जानने का काम करती है । आँख कोई खड्डा भरे और खड्डा करे, ऐसा आँख करे ? ऐसे... ऐसे... करे ? धूल निकालना (ऐसा करे) ? इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है । वह करे क्या किसी का ? आहाहा ! वह तो जानने-देखने का काम अपने में अपने से करे । आहाहा !

**मुमुक्षु :** पर का काम करना या नहीं करना ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कौन कर सकता है ? बहुतों को जिताया था । उस समय बड़े वकील कहलाते थे । पैंतीस वर्ष पहले बड़े वकील (कहलाते थे) । दो सौ रुपये लेते थे !

**मुमुक्षु :** बड़ा पापी ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सब पाप ! यह मंगलभाई कहते थे कि उस समय ये वकील थे । रामजीभाई के समय में, पैंतीस वर्ष पहले ! अभी ९६ (वर्ष) हुए । आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु ! तू तेरे अतिरिक्त पर के काम तो छू नहीं सकता और पर को



स्पर्श नहीं करता तो कर कहाँ से सकेगा ? परन्तु तुझमें जो रागादि होते हैं, वह यदि तुझे धर्म और आत्मा का भान हो तो उस राग का स्वामी होकर कर्ता नहीं होगा, ज्ञातादृष्टा रहेगा। आहाहा! अब इतनी सब शर्ते। धर्मी की शर्ते ऐसी। भाई! धर्म तो जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, चौरासी के अवतार-चक्कर मिट जाए, प्रभु! (उसे धर्म कहा जाता है)। वह तो आत्मा अन्दर पूर्णानन्द (स्वरूप से विराजता है)। आहाहा!

नरसिंह मेहता ने यह कहा नहीं? 'ज्यां लगी आतमा तत्त्व चीन्यों नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी।' ऐई..! तुम्हारे सेठ को कहा नहीं था? मुम्बई, पचास करोड़! पचास करोड़ न? इसके सेठ के पास पचास करोड़ थे। अभी मुम्बई (थे, तब) हमारे पास आया था। महिलाएँ जैन और आदमी सब वैष्णव। बेचारा दर्शन करने आया था। नारियल और एक हजार रखे थे। पचास करोड़ रुपये हैं। उसमें आत्मा का क्या भला हुआ।

**मुमुक्षु :** सेठ कहलाये।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सेठ कहलाये, नीचे जाएगा। सेठ सब नीचे जाएँगे, नीचे! सेठ तो उसे कहते हैं, श्रेष्ठ! जिसने चैतन्य भगवान आनन्द के नाथ का अनुभव किया, जाना और जो राग का स्वामी न हो, उसे सेठ और श्रेष्ठ कहते हैं। आहाहा! जगत से अलग बात है, बापू! जगत को जानते हैं न! यह तो ९० वर्ष हुए। ६७ वर्ष से तो दुकान छोड़ी है। पूरी दुनिया को (देखा है)। दस हजार मील तो हिन्दुस्तान में तीन बार घूमे हैं और यह चीज़ बापू! अलग कोई चीज़ है, भाई!

यह यहाँ सिद्ध करते हैं। (ज्ञानी) अस्थिरता (रूप से) परिणमे परन्तु करता नहीं है, इसलिए उसे **अबन्धक** कहा गया है।

विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)